सहयोग ₹ 10 प्रति महीना

भारतीय परिवार

हर कदम सत्य की ओर ....

विशेष अंक (सांगठनिक वितरण हेतु) | प्रकाशन : महीने में 2 बार | दिल्ली से प्रकाशित | सम्पर्क सूत्र : 8745026277 | ई-मेल : yuvakranti.org@gmail.com

प्रिय देशवासियों जरा सोचिए...!

"याद रखिये सबसे बड़ा अपराध अन्याय सहना और गलत के साथ समझौता करना है"

- सुभाष चन्द्र बोस

अन्दर के पृष्ठों में

आखिर किसकी दुनिया? किसका शासन? किसका पैसा?

एक प्रश्न जिसको दुनिया में बहुत कम लोग समझ पाते हैं और जिसको समझे बिना व्यवस्था परिवर्तन एक असम्भव चुनौती है। वह है कि दुनिया का हर देश और लगभग सभी व्यक्ति कर्ज में है तो यह कर्ज है किसका? पैसा क्या है और कर्ज देने के लिए इसे बनाता/छापता कौन है?

किस देश पर है कितना कर्ज?

1.	अमेरिका	18,235,489,000,000
2.	ब्रिटेन	7,554,815,500,000
3.	फ्रांस	5,104,831,200,000
4.	जर्मनी	5,002,093,100,000
5.	जापान	3,645,534,000,000
6.	स्विटजरलैंड	1,719,445,000,000
7.	ऑस्ट्रेलिया	1,603,542,800,000
8.	चीन	1,420,657,200,000
9.	रूस	529,651,000,000
10.	भारत	456,066,000,000

(सभी आंकडे डॉलर में)

बदल गए गुलामी के तरीके

हम कभी अंग्रेजों से आजाद्द नहीं हुए, बस शासन करने के तरीके बदल गए और हमने आजाद्दी का भ्रम पाल लिया। यह याद रखना जरूरी है कि सबसे पहले वे लोग गुलाम बनते हैं जिनको ये भ्रम हो जाता है कि वे आजाद्द हैं।

1862 में ब्रिटिश बैंकिंग द्वारा अमेरिकी बैंकर्स के लिए एक सुझाव - **"मैं और मेरे यूरोपियन मित्रों को यह जानकर खुशी हुई कि गृहयुद्ध के बाद अमेरिका में जातिगत गुलामी खत्म हो जाएगी, क्योंकि इसमें मालिक को गुलामों कि सारी जिम्मेदारियाँ भी उठानी पड़ती हैं। जबकि सबसे सरल तरीका यह है कि पूँजी द्वारा लोगों की आमदनी नियंत्रित करके उनको नियंत्रित किया जाए। और यह सब किया जा सकता है पैसे को नियंत्रित करके।"**

दिखाए गए पिरामिड में शीर्ष पर विश्व के शासक विराजमान हैं और बिल्कुल नीचे शोषित जनता है, जो निरन्तर अभाव में जी रही है। जनता पर नियंत्रण के लिए दुनिया के हर देश में सरकारें विराजमान हैं, जो आम तौर पर जनता के हित में नहीं बल्कि विश्व के शासकों के लिए काम करती हैं। मीडिया और शिक्षा व्यवस्था सरकार के सहयोग से विश्व के शासकों के पक्ष में लोगो का मानस निर्माण (मानसिक गुलामी) का काम करती है। शोषण के विरोध में खड़े लोगों का दमन करने के लिए खुफिया संस्थाएं, सेना, पुलिस, कोर्ट, जेल इत्यादि की व्यवस्था बना रखी है। सरकारों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बैठी हैं जो विश्व के सभी संसाधनों को नियंत्रित करती हैं। अधिकतर लोगों को यह लगता है की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ही स्वतंत्र रूप से विश्व को चलाती हैं। लेकिन इनके ऊपर एक ऐसी व्यवस्था है, जो सही मायने में विश्व का आर्थिक नियंत्रण करते हुए शासकों के साम्राज्य को बनाए हुए है। यह नियंत्रण ब्याज, कर (टैक्स) राजस्व, केन्द्रीय बैंक, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) और बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेटलमेंट जैसी संस्थाओं के माध्यम से होता है।

विश्व के शासकों के मंत्री के रूप में काम करते हैं और ये सभी अपना एक-एक प्रतिनिधि लन्दन शहर के पार्षद के रूप में नियुक्त करते हैं। इन 13 लोगों के आयोग में रोथशिल्ड परिवार, रॉकफेलर परिवार, मोरगन परिवार, स्किफ परिवार प्रमुख हैं।

व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर लोग किसी कानून में परिवर्तन चाहते हैं और दलील देते हैं कि सख्त से सख्त कानून बना देने से समस्याओं का समाधान हो जाएगा; जबकि वे लोग यह नहीं जानते की व्यवस्था का ढाँचा कुछ और ही है और सरकारें स्वतंत्र नहीं हैं। इस व्यवस्था को चलाने के लिए कुछ लोगों ने एक रणनीतिकार समूह बनाया हुआ है, जो षड्यंत्रकारी ढंग से छिपकर विश्व की दशा और दिशा तय करते हैं। इसके ऊपर 300 लोगों का एक आयोग बना हुआ है जो विश्व के सबसे अमीर और ताकतवर उप-परिवार है। इनके ऊपर 13 लोगों की शीर्ष परिषद है जो विश्व के सबसे ताकतवर परिवार हैं, जो विश्व के

प्रसिद्ध फोर्ड कम्पनी के संस्थापक हेनरी फोर्ड ने इस व्यवस्था के बारे में कहा है, "यह अच्छा है कि देश के लोग हमारी बैंकिंग और मौद्रिक प्रणाली (Monetary System) को नहीं समझते। अगर समझते तो मुझे विश्वास है कि कल सुबह होने से पहले क्रान्ति हो जाएगी।" तो ऐसी क्या बात है, जिसे अगर देश के लोग समझ लें तो क्रान्ति होनी निश्चित है! इस बात को समझने के लिए हमें यह जानना होगा की आखिरकार यह 'पैसा' है क्या?

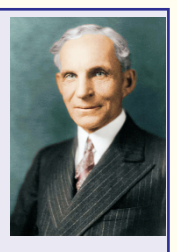

सरकारें नहीं बैंक बनाते हैं देश का पैसा

एक रुपये का नोट और अन्य नोट

जैसा की ऊपर के चित्रों में आप देख रहे हैं, तीन तरह के रुपये हैं, एक रुपया चाँदी का है जो कि भारत सरकार ने जारी किया है, जिसकी कीमत एक तोला (10 ग्राम) चाँदी है। दूसरे चित्र में आप एक रुपये का नोट देखेंगे, यह भी भारत सरकार ने जारी किया है और इस पर वित्त मंत्रालय के वित्त सचिव के हस्ताक्षर हैं। तीसरी तस्वीर में एक रुपये का सिक्का है और यह भी भारत सरकार द्वारा जारी किया गया है। लेकिन 2 रुपये से लेकर 2,000 रुपये तक सभी नोट अलग तरह के मिलेंगे। इसमें पहला अन्तर यह है कि यह भारत सरकार द्वारा नहीं, बल्कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किया गया है और भारत सरकार ने इसे गारंटी दी है। इन नोटों में से आप यहाँ एक 100 रुपये के नोट की तस्वीर देखो। जिस पर लिखा है - **"मैं धारक को 100 रुपये अदा करने का वचन देता हूँ।"** और इस के नीचे भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर के हस्ताक्षर होते हैं। इस तरह की बात आप 2 से 2,000 रुपये के सभी नोटों में देख सकते हैं, जो बात एक रुपये के नोट में नज़र नहीं आती है।

मतलब यह है कि यह 100 रुपया नहीं है सिर्फ 100 रुपये की रसीद है जिसे अगर आप भारतीय रिज़र्व बैंक को दें तो 1933 से पहले वह आपको 100 चाँदी के रुपये देता, परन्तु अब नहीं मिलेंगे।

अर्थशास्त्री का खुलासा

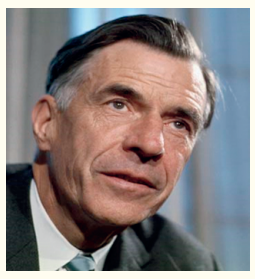

इस विषय पर अर्थशास्त्री जॉन केनेथ गालब्रेथ कहते हैं, "बैंकों के पैसे बनाने की प्रक्रिया इतनी सरल है कि दिमाग चकरा जाता है।" दिमाग इसलिए चकरा जाता है क्योंकि हमें कुछ और ही सिखाया गया है।

रॉबर्ट बी. एंडरसन, अमेरिका के वित्त सचिव (1959), **"जब एक बैंक कर्ज देता है तो यह केवल कर्ज की राशि बैंक अकाउंट में लिख देता है। यह पैसे बैंक किसी और के जमा किए गए पैसों से नहीं लेकर देता। यह पैसा उधार लेने वालों के लिए बैंकों ने नया बनाकर दिया होता है।"**

इस तरह से बैंक मुफ्त में पैसा बनाकर जनता और सरकार दोनों को कर्ज दे देती है। और हम इस कर्ज का भुगतान करने के लिए जीवन भर गुलामी करते रहते हैं।

बजट 2015 - 2016

सरकार ने टैक्स के रूप में 14,49,490 करोड़ रुपये एकत्रित किए जिसमें से 5,23,958 करोड़ रुपये राज्यों को उनके हिस्से के रूप में दिए। 2,21,733 करोड़ रुपये की सरकार की आमदनी जोड़ने से कुल आय 11,41,575 करोड़ रुपये हो जाती है। इस आय में से सामाजिक सेवाओं (शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रसारण इत्यादि) और आर्थिक सेवाओं (कृषि उद्योग, विद्युत, परिवहन, संचार, विज्ञान, प्रोद्योगिकी इत्यादि) जैसे देश के जनकल्याण के कार्यों में मात्र 58,127 करोड़ रुपये खर्च किए, जबकि 6,81,719 करोड़ रुपया बैंको को सौंप दिए।

सरकार को टैक्स देना बेवकूफी है?

वर्ष 2015-16 के बजट में 11,41,575 करोड़ की आय में से भारत सरकार ने 4,56,145 करोड़ रुपये (40 प्रतिशत) ब्याज चुकाया है और 2,25,574 करोड़ रुपये (20 प्रतिशत) कर्ज चुकाया। अगर सरकार अपने पैसे खुद बनाती तो एक भी रुपया नहीं देना पड़ता। राज्य सरकारों का भी इतना ही पैसा कर्ज का जाता है। टैक्स का 60 प्रतिशत सरकार बैंकों को क्यों सौंप देती है? हम डीजल, पैट्रोल, वैट, आयकर से लेकर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप से हज़ारों जगह लाखों रुपया टैक्स भरते हैं। क्यों? क्या हम बेवकूफ हैं? गधे हैं?

(लेख बैंकों का मायाजाल पुस्तक से)

अगले अंकों में

- ग्लोबल वार्मिंग या ग्लोबल गुलामी
- राष्ट्रगान : देशभक्ति या देशद्रोह
- आजाद हिन्द सरकार का संवैधानिक दर्जा क्या?
- कैंसर बीमारी नहीं बिजनेस है
- तेल का खेल
- हथियारों का सौदागर : अमेरिका

जितना ज्यादा पढ़ा-लिखा उतना ज्यादा मूर्ख

मनुष्य वैसा ही होता है जैसी शिक्षा उसे मिलती है। समाज भी वैसा ही होता है जैसी उसकी शिक्षा व्यवस्था होती है। यदि कोई समाज संकट में है तो समझना चाहिए कि समाज की शिक्षा व्यवस्था ठीक नहीं है। सरकारी आंकड़ों पर यकिन करें तो समाज में पढ़े-लिखे लोगों का प्रतिशत बढ़ रहा है। ऐसे में उम्मीद थी कि विभिन्न सामाजिक समस्याऐं

(मानसिक तनाव, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, हिंसा, शोषण, बीमारी) भी उसी रफ्तार से कम हो रही होगी। मगर ऐसा है नहीं। उल्टे अधिकांश स्थानों पर देखा गया है कि समस्याऐं बढ़ रही हैं। जीवन में अशांति, परिवार में विघटन, समाज में अराजकता, प्राकृतिक विनाश कुल मिलाकर चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। आखिर ऐसा क्यों?

पढ़े-लिखे मूर्ख कैसे?

कुछ समय पहले तक हमारे देश में गुण और व्यवहारिक ज्ञान की महत्ता थी। लेकिन आज वह बदल कर पढ़े-लिखे लोगों को समझदार मानने की प्रथा में बदल गई है। आज जब हम पढ़े-लिखे लोगों से मिलते हैं और उनकी बातों को सुनते हैं तो मालूम होता है कि पहले बिना पढ़े-लिखे लोग काफी समझदार और बुद्धिमान थे। आज की आधुनिक शिक्षा ने लोगों की बुद्धि का विकास न करके विनाश किया है। इसके सैकडों प्रमाण देखने को मिलते हैं। जैसे आज का पढ़ा-लिखा नौजवान कहता है कि मनुष्य जन्म केवल खाने-पीने, मौज-मस्ती, पार्टी बाजी, जुआ खेलने व नशा आदि के लिए ही तो मिला है। हर वस्तु खाने के लिए ही बनी है। पहले बिना सोचे-समझे आंख बंद करके जो मिले उसे खा जाओं बाद में उल्टी या दस्त करके उसे निकाल दो। परन्तु खाने के समय कुछ न सोचो।

कुत्तों से सावधान

पढ़े-लिखे अमीरों के घरो में देखा जाता है कि बाथरूम को बेडरूम से अधिक सुंदर सजाया जाता है। वहां पढ़े-लिखे अमीर लोग शौच करते-करते मैंगजीन, न्यूज पेपर व मोबाईल के द्वारा अपना समय पास करते हैं। सुबह-सुबह भजन, संगीत आदि से ज्यादा श्रेष्ठ एक कुत्ते की जंजीर पकड़ कर उसे शौच करवाने जाना उचित समझा जाता है। वह अपने बच्चों के लिए नौकर रखता है और स्वयं कुत्ते का नौकर बनकर उसे स्नान करवाना, गाड़ी में घुमाना व उसे अपने साथ सुलाता भी है। साथ ही साथ घरों के दरवाजे पर अतिथि देवो भवः की जगह कुत्तों से सावधान लिखवाकर स्वयं परिवार सहित अपने को विकसित समझता है।

आज पढ़ने-लिखने के बाद व्यक्ति के मन में एक झूठे अहम की भावना आ जाती है। वह स्वयं को सबसे बुद्धिमान, होशियार व अप्रत्यक्ष रूप से चालाक भी समझने लगता है। वह मानने लगता है कि वह जो सोच रहा है वही सत्य है। और इसी भ्रम में वह किसी और की बात को सुनने को तैयार ही नहीं होता। ऐसे में उसके गलत होने का उसे पता नहीं चलता, वह अपनी धुन में चलता है, स्वयं को तीरंदाज समझते हुए अपने ही विचारों के इर्द-गिर्द घुमकर भ्रम में चलने लगता है तो जाने-अंजाने में ही वह दुनिया से कट जाता है। वह अपने चारों ओर एक अदृश्य दीवार खड़ी कर लेता है। आज चूँकि हर दूसरा आदमी तथाकथित रूप से पढ़ा-लिखा हो चुका है तो सबकी अपनी-अपनी दीवारे हैं। ये दीवारें अकसर एक दूसरे से टकराती हैं। इस स्थिति में मनुष्य अकेला हो जाता है। परिवारिक और सामाजिक ताना-बाना टूटने से उसकी मानसिक स्थिति असंतुलित होने लगती है। क्योंकि उसने बात-चीत के सारे रास्ते बंद किये होते हैं ऐसे में उसे समझाये कौन? परिणाम स्वरूप वह अपने ही मकड़ जाल में फँसता चला जाता है। **बेशक काल्पनिक खुशियां अंदर से पैदा होती हो, लेकिन वास्तविक सुख की अनुभूति चार लोगों के बीच अपने सुख-दुःख बांटने से ही मिलती है।** अब जब उसके पास कोई है ही नहीं तो वह सुख और दुख में खुद को अकेला खड़ा पाता है। **आज समाज के पेशेवर अपराधियों से ज्यादा खतरा पढ़े-लिखे सफेद पोशाकधारी अपराधियों से है। आज समाज को चोर, डकैतों से ज्यादा पढ़े-लिखे लूट रहे हैं।** यह परिस्थिति दिन-प्रतिदिन हर क्षेत्र में विकराल रूप धारण करती जा रही है और इन्ही सब बातों से पढ़े-लिखे मनुष्य की सोच और कार्यशैली देखकर एक बात आसानी से कही जा सकती है कि जो जितना ज्यादा पढ़ा-लिखा, उतना ज्यादा मूर्ख।

पढ़ा-लिखा हो न हो, समझदार हो।

आधुनिक युग और पुराने समय में एक विशेष अंतर देखा जा सकता है। पहले की अपेक्षा आज पढ़ने-लिखने पर अधिक जोर दिया जाता है। जबकि पूर्व में समझदार होना अधिक महत्वपूर्ण होता था। जीवन के अनुभवों से व्यवहारिक ज्ञान को सीख कर आत्मसात करते हुए जीवन जीना समझदारी के मूल में था। भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मिक सुख (प्रेम और आनन्द) केन्द्र में होता था। स्वयं से उपर उठ कर परिवार, समाज और प्रकृति के साथ समन्यवय बनाया जाता था। व्यक्ति सबसे पहले घर परिवार के बुजुर्गों को देखकर बचपन से ही व्यवहारिक ज्ञान सीखता था। उसे बताने समझाने वाले एक नहीं अनेक होते थे। इसी प्रक्रिया में उसका सम्पर्क परिवर्तित होकर संबंध के रूप में स्थापित हो जाता था। ये रिश्ते जीवन भर साथ चलते थे और इनका व्यक्ति के साथ प्रेम, समन्वय व विश्वास होता था।

विश्वास होने से यह संबंध एक-दूसरे की भलाई के लिए काम करते थे। गलत काम करने पर टोका-टाकी और सही रास्ते पर जाने के लिए शाबाशी मिलती थी। **कुल मिलाकर व्यक्ति को हर पल व्यवहारिक, परिवारिक, सामाजिक, और आर्थिक मार्गदर्शन मिलता रहता था। अध्ययन, अध्यापन की पाठशाला जीवन भर घर में चलती रहती थी। व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा हो जाये, अपने से बड़ों का लिहाज करता था, इससे सामाजिक ताना-बाना उच्च स्तर का बना रहता था।**

चोट खाकर सीखना अकलमंदी नहीं।

जरूरी नहीं कि गिरकर व चोट खाकर ही सीखा जाये। बड़ो के अच्छे-बुरे अनुभवो से सीख कर बचा भी जा सकता है। कहानियो एवं नाटकों के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक संबंधों को आसानी से समझ कर अपने दैनिक जीवन, परिवार व समाज पर आयी मुश्किलो को सुलझाने के उपाय भी ढूँढ़ लिया करता था।

किताबी ज्ञान से बड़ा व्यवहारिक ज्ञान

एक कक्षा में गणित के अध्यापक ने एक बच्चे से पूछा कि 100 भेड़ों में से एक भेड़ कुएँ में गिरे तो कितनी बची? उत्तर देने के लिए जिस बच्चे को खड़ा किया, संयोग से वह एक गड़रिया था। **"उसने जवाब दिया कि एक भी नहीं बचेगी।"** इस पर अध्यापक गुस्सा हुए तो बच्चे ने कहा कि गुरू जी मैने तो यह जाना है कि **यदि एक भेड़ कुएँ में गिरे तो बाकि सभी भेड़े उसका अनुसरण करती है। ये गड़रिये के बच्चे का व्यवहारिक ज्ञान था जिसे कोई भी नकार नहीं सकता।** गणित के उस अध्यापक को गणित की समझ तो थी पर व्यवहारिक ज्ञान नहीं था। आज हमारी शिक्षा व्यवस्था हमें व्यवहारिक ज्ञान से काट कर मात्र कुएँ का मेढ़क बना रही है।

पढ़े-लिखो ने किया देश का बंटाधार

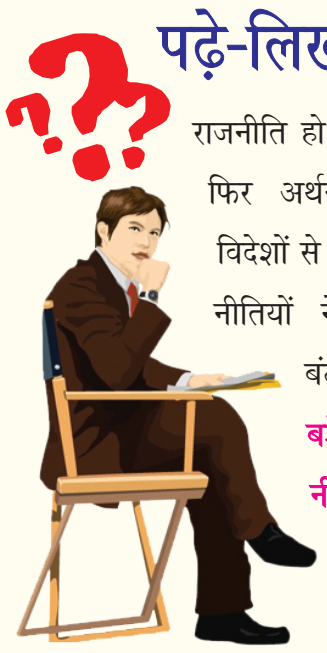

राजनीति हो, शिक्षानीति हो या फिर अर्थनीति (अर्थशास्त्र), विदेशों से आयात की गई इन नीतियों ने देश का ऐसा बंटाधार किया है कि **बड़े-बड़े विद्वानों और नीतिज्ञों के होते हुए भी दिन प्रतिदिन देश रसातल में जा रहा है। जो अर्थनीति किसी देश का आधार होती है उसमें न जाने क्या-क्या परिभाषाएँ जोड़ दी गई हैं जिसे पढ़कर लोग सिस्टम के अनुसार बड़े-बड़े अर्थज्ञाता तो बन जाते है लेकिन व्यवहारिक ज्ञान के नाम पर उनमें आजतक इतना ज्ञान विकसित नहीं हो पाया कि कैसे देश कि आर्थिक समस्यायें दूर कर हर एक भारतीय की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जायें।** किसी समय हमारे यहां के राजा और मंत्री बिना किसी हावर्ड - ऑक्सफोर्ड में पढ़े ऐसी अर्थनीतियां बनाते थे कि हमलों में बर्बाद हुआ राज्य फिर कुछ ही वर्षों में दोबारा ऐसा चमक उठता था जैसे कुछ हुआ ही न हो।

"हो सकता है आपमें से काफी लोगों को ये बातें समझ में न आये या फिर कोई अबूझ पहेली जान पड़े तो इसके लिए आप बिल्कुल भी दोषी नहीं है। क्योंकि बचपन से ही आपको सिर्फ किताबी ज्ञान मिला, जिसमें सोचना या स्वतंत्र रूप से विश्लेषण करना सिखाया ही नहीं जाता।"

भारतीय समाज को समझदार से मूर्ख कैसे बनाया गया?..... विस्तार से अगले अंको में।

संजय सामाजिक की कलम से

भारत एक उद्योग प्रधान देश

प्रस्तुत लेख श्री रवीन्द्र शर्मा जी (गुरुजी) के साथ समय-समय पर हुई बातचीत एवं उनके औपचारिक तथा अनौपचारिक व्याख्यानों पर आधारित है। गुरुजी तेलंगाना के अदिलाबाद में रहते हैं। वे स्वयं लगभग सभी पारम्परिक कारीगरी (मूर्तिकला, लुहारी, सुनारी, कुम्हारी इत्यादि) में महारथ रखने के साथ-साथ लोक-ज्ञान परम्पराओं की बहुत गहरी समझ रखते हैं, चाहे वह गाँवों की व्यवस्थाएँ हों, जातियों की हों, विभिन्न समुदायों की हों। उनकी बातें सुनकर भारत के बारे में एक ऐसी तस्वीर उभरती है जिसका मेल एक तरफ महात्मा गाँधी की बातों से और दूसरी तरफ धर्मपाल जी के शोध एवं उनकी दृष्टि से बैठता है। हालाँकि तीनों अलग-अलग दिशाओं से आते हैं।

भारत को "सोने की चिड़िया" कहा जाता रहा है और यह एक कारण रहा है बाहर के अनेक आक्रमणों का। पर हमारे लोगों ने इस पर गौर करने की शायद कोशिश नहीं कि भारत "सोने की चिड़िया" बना कैसे?

यह केवल एक बार बना हो ऐसा भी नहीं है। हर बार लुटने के बाद यह फिर से समृद्ध, फिर से सोने की चिड़िया बनता रहा है। हमारा हर बार, बहुत ही शीघ्र गति से समृद्ध हो जाना भी हम पर ढेरों आक्रमणों और लगातार हुई लूट का मुख्य कारण रहा है।

बुरी तरह से लुटने के बाद भी इतनी जल्द फिर समृद्ध हो जाने के कारणों पर हमने ठीक से ध्यान नहीं दिया है।

पाप था दूध-दही व अनाज बेचना

हमारे देश में कुछ मान्यताएँ बड़े पैमाने पर रही हैं, जैसे- अनाज, दूध, दही बेचना पाप माना जाता रहा है। अभी 20-25 वर्षों पहले तक बहुत सारे गाँवों में दूध, दही अनाज नहीं बेचा जाता था। "धान्य" बेचना पाप माना जाने की वजह से अनाज का व्यापार तो हुआ ही नहीं है। अनाज हमेशा लेन-देन की वस्तु रहा है।

जड़ी बूटियों से निकाला आदिवासियों ने सोना-चाँदी?

तो सवाल उठता है हमारे पास इतना सोना-चाँदी आया कहाँ से? अँग्रेज़ों की 200 सालों की गुलामी के बाद भी 60-65 वर्षों की असीम दरिद्रता के बावजूद आदिवासी इलाकों में जाने पर वहाँ की महिलाओं के शरीर पर तीन-तीन, चार-चार किलो चाँदी के गहने तो सहज ही देखने को मिल जाते हैं।

पाव-पाव किलो के पंजोल होते हैं। सौ-डेढ़ सौ तोले (एक-डेढ किलो) का तो कमर का पट्टा होता है। पौन किलो की गले की हसली होती है। इसके अलावा हाथ के, पैरों के, बाजुओं के, सिर के, उँगलियों आदि शरीर के ढेरों आभूषण होते हैं। कम से कम दो-ढ़ाई किलो चाँदी तो उनके शरीर पर आसानी से हुआ करती थी।

कभी हमने सोचा कि इतनी चाँदी इनके पास आई कहाँ से होगी? जंगल में रहने वालों के पास, आदिवासियों के पास इतनी चाँदी! क्या ये लोग झाड़-पेडों से या जडी-बूटियों से चाँदी निकाला करते थे? आखिर यह चाँदी आई कहाँ से?

सोचने वाली बात यह भी है कि भारत में सोने की कुछ खदानें तो पाई जाती है पर चाँदी की तो किसी भी खदान का पता नहीं चला है। हिन्दुस्तान में चाँदी कभी भी खदानों से निकली नहीं है। सोना निकाला है, हीरे निकले हैं, पर चाँदी नहीं निकली है।

इसी तरह हमारे देश में कई आक्रमण हुए, हम लूटे गए, यह तो हमें ज्ञात है। दूसरे देशों पर आक्रमण कर, वहाँ से बेशकीमती, चीज़ें, धन-दौलत लूटकर भारत में लाई गईं हों, इस तरह का कोई उल्लेख हमारे या विश्व के किसी अन्य इतिहास में नहीं मिलता। अर्थात, हमारे यहाँ का धन-दौलत . सोना, चाँदी, हीरा आदि बाहर से लूटकर नहीं लाया गया है।

देश को 'कृषि प्रधान' मानना हमारा भ्रम

आधुनिक पढ़ाई से एक भ्रम फैला है की भारत एक "कृषि-प्रधान" देश है। जबकि सच्चाई यह है कि भारत हमेशा से एक "उद्योग-प्रधान" देश है।

हाँ, यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था ज़रूर कृषि-प्रधान रही है। पर यहाँ तो घर-घर में एक कारखाना था। पूरा देश कारीगरी-प्रधान था। आज की तरह हर किसी को न कृषि का अधिकार था न ही उसे करने की सबके पास दक्षता थी। अनेक कारीगर जातियों (असल में जाति, ज्ञाति का बिगड़ा रूप लगता है, यानि जो विशेष जानकारी रखते हैं), जैसे . कुम्हार, लुहार, सुनार, सुतार, बसोड़ आदि की तरह कृषि मे लगे लोगों की भी जातियाँ थी, जिन्हें कुनबी, कुर्मी आदि कहा जाता था। इनके अतिरिक्त शेष सभी या तो कारीगरी या भिक्षावृति के कार्यों में लगे हुए थे।

कैसे बने थे हम सोने की चिड़िया?

जब देश में चाँदी की खदानों का पता नहीं है, हीरे और रत्नों की भी कोई विशेष खदानें यहाँ नहीं हैं, और उसके ऊपर से अनाज बेचना एक पाप होने की वजह से अनाज का कोई व्यापार हुआ नहीं। तो फिर इतनी सारी धन-सम्पदा हमारे पास आई कहाँ से?

स्वाभाविक है, उद्योग एवं व्यापार से। व्यापार भी उन वस्तुओं का जो कि हमारे उद्योगों द्वारा निर्मित की गईं हैं न कि कृषि उत्पादों के व्यापार से। हमारे कारीगरों, उनके कारीगरी सामर्थ्य और उनके कारखानों की बदौलत ही भारत "सोने की चिड़िया" कहलाया।

देश का जो सारा धन था, जिसके कारण इसे "सोने की चिड़िया" कहा जाता था, वह सारा का सारा धन हमने व्यापार करके कमाया था, किसी और माध्यम से नहीं।

यहाँ का सारा बाहरी व्यापार कारीगरी वस्तुओं का ही हुआ है। लोहा, नमक, रत्न, संस्कारित मसाले, ढेरों अन्य कारीगरी सामान आदि व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ रही हैं।

उद्योग और व्यापार में थे अग्रणी

19वीं शताब्दी तक विश्व निर्यात के क्षेत्र में भारत के अग्रणी बने रहने के कई प्रमाण आज उपलब्ध हैं। भारत के उद्योग, भारत की कारीगरी न केवल घर-घर में व्याप्त थी, बल्कि बहुत ही उत्तम दर्जे की थी। भारत को सोने की चिड़िया नाम से प्रसिद्धि दिलाने में भारत के उद्योगों, भारत की कारीगरी की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका थी।

लिए भारत के गाँव-गाँव में फैले विकेन्द्रीकृत उद्योगों (कारीगरी) को बन्द करना आवश्यक था। भारतीय कारीगरों से मिलने वाली कठिन प्रतियोगिता खत्म करने के लिए, साम, दाम, दण्ड, भेद की नीतियाँ अपनाकर हमारे कारीगरों को धीरे-धीरे उनकी कारीगरी विधाओं से बेदखल कर दिया गया और उन सभी को कृषि के कार्य में विस्थापित किया। अन्यथा, इसके पहले तक परम्परागत कुनबी (कुर्मी) जाति के अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति के लोगों को कृषि कार्य में संलिप्त होने की ज़रूरत नहीं थी। इस तरह हमारी सारी कृषि योग्य ज़मीन और हमारा सारा कृषि कार्य पीढ़ियों से विशेषज्ञ जाति (ज्ञाति) के पास सुरक्षित थी।

आज भी कायम है गलत धारणाएं

अँग्रेज़ों और उनके बाद आज आज़ादी मिलने के 70 साल बाद तक हमारे बारे में हम पर थोपी हुई गलत धारणाओं के कारण (कि हम एक कृषि-प्रधान समाज हैं), हमारी नीतियाँ हमारे सारे प्रोत्साहन कृषि क्षेत्र को दिए गए और उसका नतीजा हमारे सामने है। आज एक ओर, भारत की विश्व व्यापार में भागीदारी घटकर 1-2 फीसदी के आस-पास आ गई है। जबकि दूसरी ओर कृषि क्षेत्र में मिले ढेरों प्रोत्साहनों के कारण और कारीगरी से बेदखल लोगों को कोई अन्य विकल्प न सुझाए जाने के कारण, कृषि कार्य में उसकी क्षमता से ज़्यादा लोग लगे हुए हैं। जिसके कारण यह क्रमशरू घाटे की आजीविका रह गई है।

कारीगरी क्षेत्र (बहुत सारी नई कारीगरी विधाओं के साथ) अभी भी देश में कृषि के बाद सबसे बड़ा रोज़गार प्रदाता क्षेत्र है। विभिन्न अध्ययनों के माध्यम से देश में कारीगरी पर आधारित जनसंख्या 25 से 30 करोड आँकी गई है।

परन्तु, जिस तरह का आर्थिक तंत्र कृषि क्षेत्र के लिए प्रदान किया जाता रहा है . विशालकाय ऋण माफी कार्यक्रम, ऋण प्रदायक तंत्र (किसान क्रेडिट कार्ड, क्रॉप लोन, कृषि सहकारी समितियाँ, को-ऑपरेटिव बैंक, व्यवसायिक और निजी बैंक), खाद एवं बीज आदि में मिलने वाली छूट, विभिन्न तरह की तकनीकी सहायता तंत्र (स्वतंत्र मंत्रालय, विभिन्न विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, सरकारी एवं गैर-सरकारी शोध संस्थाएँ, देश भर में फैला कृषि विज्ञान केन्द्रों का जाल इत्यादि), भण्डारण एवं विपणन तंत्र, फसल बीमा एवं इसके अलावा अनेक प्रकार के बजटीय प्रावधान आदि के मुकाबले समूचा कारीगरी क्षेत्र एकदम अछूता सा रह गया है।

जिस तरह का प्रोत्साहन एंव सहयोग-तंत्र कृषि क्षेत्र के लिए कार्य कर रहा है लगभग उतना ही, बल्कि उससे भी विशाल प्रोत्साहन एवं विस्तृत सहयोग-तंत्र देश एवं प्रदेश में बड़े उद्योगों एवं राष्ट्र में औद्योगिकरण को बढ़ावा देने के लिए कार्य कर रहा है।

लेकिन, इस व्यवस्था में कारीगरी क्षेत्र और उससे सम्बन्धित समूचे कार्य हमारे मूलभूत उद्योग होने के बावजूद कहीं छूट गए हैं।

अंग्रेजों का षडयंत्र हमारे पतन का कारण

इस दृष्टि से देखने पर भारत हमेशा से एक उद्योग-प्रधान देश ही नज़र आता है। पूरा देश विभिन्न तरह के औद्योगिक कौशल एवं कारीगरी उत्पादों का वैश्विक व्यापार ही हमारी अकूत धन-सम्पदा का कारण था। अँग्रेज़ों के भारत में आगमन से पहले और उसके बहुत समय बाद तक भारत विश्व व्यापार में 25-30 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ पहले स्थान पर रहा करता था। उस दौरान व्यापार की जाने वाली वस्तुओं में कारीगरी उत्पादों और प्रसंस्करित मसालों की प्रमुखता रही है, न कि कृषि उत्पादों की।

भारत को "कृषि प्रधान" देश का ठप्पा लगाना और उसके माध्यम से हमारी अपने देश के बारे में इस तरह की छवि का निर्माण करना, अँग्रेज़ों की एक सोची-समझी चाल थी।

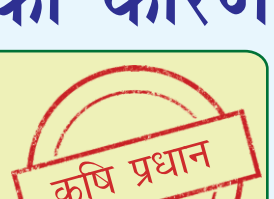

एक ओर उसे अपने बढ़ते सम्राज्य और उनके नए-नए विशालकाय उद्योगों में लगने वाले कच्चे माल के लिए कई तरह के कृषि उत्पादों की ज़रूरत थी (कपास, नील इत्यादि)! दूसरी ओर, इन बड़े-बड़े उद्योगों से निकले उत्पादों की सरलता से बिक्री के

गाँव में थी मार्केटिंग और धन बँटवारे की स्वतंत्र व्यवस्थाएं

कृषि क्षेत्र में निर्भरता बढ़ने से पहले, हमारे समाज में कारीगरी के क्षेत्र में तरह-तरह का सामर्थ्य सहज ही भरा पड़ा था। हम उद्योग-प्रधान देश होने के नाते न केवल कारीगरी एवं औद्योगिक कौशल के मामले में अग्रणी थे, बल्कि उससे भी बढ़िया हमारा व्यापारिक कौशल था। गाँवों में मार्केटिंग और मार्केटिंग के बाद धन के बँटवारे को लेकर कुछ स्वंतत्र व्यवस्थाएँ, कुछ पक्के नियम थे, जिनका लोग बहुत कड़ाई से पालन किया करते थे।

शेष पृष्ठ 4 पर

समृद्धि नहीं बर्बादी का रास्ता चुन लिया गांव ने

हमारी उन व्यवस्थाओं के कारण ही दूर देशों के व्यापार से प्राप्त हुई चाँदी, सुदूर गाँवों के आदिवासियों इलाकों तक की बराबर पहुँचती रही है।

इन नियमों में सबसे पहला नियम था कि गाँवों के लोगों से कमाए पैसों से गाँव के बाहर की कोई चीज़ नहीं खरीदी जा सकती। बाहर की चीज़ खरीदनी हो, तो गाँव के बाहर से पैसा कमाना होता था।

गाँव के कारीगर, गाँव की ज़रूरतों को तो पूरा करते ही थे, मगर उसके बाद भी इनके पास बहुत समय रहता था। अपने खाली समय में और बारिश के मौसम आदि में ये लोग बहुत सुन्दर-सुन्दर चीज़ें बनाते थे। ये चीज़ें या तो जात्राओं में बिकती थीं या फिर बाहर के देशों में व्यापार के लिए चली जाती थीं। ये लोग गाँव के बाहर जात्राओं से कमाकर वहीं से सोना खरीदकर लाते थे। गाँव में चीज़ें बेचकर सोना नहीं खरीदा जाता था।

आजकल तो इसके विपरीत गाँव के पैसे से बाहर की चीज़ें गाँव में प्रवेश कर रही हैं। गाँव का पूरा पैसा बाहर के बाज़ारों की चीज़ें खरीदने में लग रहा है। गाँव की पूरी समृद्धि इसी रास्ते गाँव से बाहर जा रही है।

व्यापार और यात्राओं की प्राचीन पद्धतियाँ

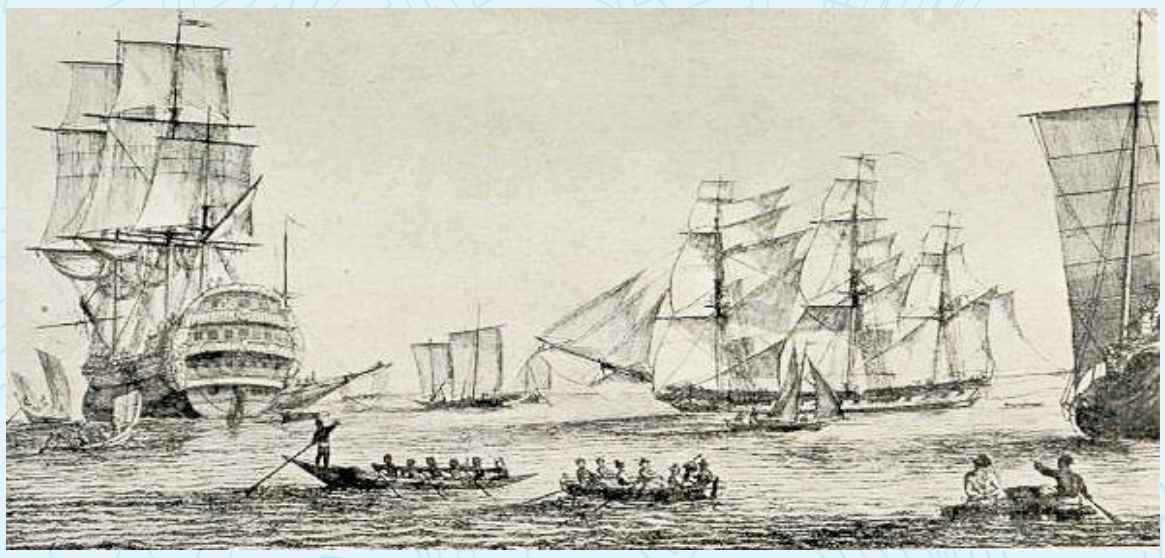

हमारे यहाँ व्यापार दो तरीकों से चला है। एक तो पानी के द्वारा - जहाज, नाव आदि के माध्यम से और दूसरा सड़कों के द्वारा सार्थवाह के माध्यम से। पुराणों आदि से लेकर अनेक किस्से-कहानियों में वैश्यों के ढेरों ज़िक्र आते हैं।

हमारे यहाँ एक चन्द्रगुप्त वेदालंकार हुए हैं। बहुत छोटी उमर में ही गुज़र गए थे। मगर उस छोटी से उम्र में ही उनकी एक बहुत ही ज़बदस्त किताब देखने में आई थी -वृहत्तर भारत। उसमें भारत के रास्तों का एक बहुत बड़ा अध्ययन सरीखा था। देश के विभिन्न रास्तों का बहुत ही विस्तार से वर्णन था कि व्यापार के लिए हम कौन-कौन से रास्ते इस्तेमाल करते थे, तीर्थों के लिए हम कौन से रास्ते इस्तेमाल करते थे आदि।

उस पुस्तक में सार्थवाहों की पूरी पद्धति का भी बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है कि एक-एक समूह में किस-किस तरह के कितने-कितने लोग होते थे। इनके साथ कौन-कौन सी सुविधाएँ और कैसी-कैसी व्यवस्थाएँ होती थीं? सार्थवाहों के साथ में बाकायदा उनकी सेना चलती थी। उनके स्कूल इत्यादि भी साथ में ही चलते थे। उनके वैद्य एवं अन्य चिकित्सीय सहायता तो साथ में चलती ही थी। एक-एक सार्थवाह में हज़ारों लोग एक साथ चलते थे। इतने सारे लोगों के राशन-पानी की, दैनिक शौच इत्यादि की व्यवस्थाओं की विस्तृत जानकारी इस पुस्तक में मिलती है।

लोगों की लम्बी दूरी तय करके एक स्थान से दूसरे स्थान, जैसे - तमिलनाडु से तक्षशिला आदि जाना होता था तो वे किसी सार्थवाह में अपना नाम लिखा देते थे। नियत समय पर जब सार्थवाह उस जगह से गुज़रता, तो वह उनके साथ हो जाता था। काशी जाना है या कहीं और की यात्रा करनी हो तो वे किसी सार्थवाह के साथ निकल जाते थे। चूँकि उनकी पूरी व्यवस्था उनके साथ चलती थी, इसीलिए किसी भी चीज़ की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं होती थी।

वैश्य वर्ग कोई जाति नहीं

इसी प्रकार हमारे यहाँ वैश्य वर्ग कोई अलग समाज या अलग जाति नहीं थी। हर कारीगर वर्ग में से एक छोटा सा समूह होता था जो अपने और अपने समाज के लोगों की बहुत सारी चीज़ों को गाँव और देश से बाहर बेचने के लिए निकलता था। जुलाहों में से एक समूह, चर्मकारों में से एक समूह, बढ़ईयों में से एक समूह निकालता था और ये सारे लोग मिलकर बाहर के व्यापार के लिए जाते थे।

इन दोनों तरीकों (पानी और सड़क) के व्यापारों में, ये लोग विदेशों में जाकर अपना सामान आदि बेचकर बदले में चाँदी आदि लाते थे। फिर उसको अपने-अपने समाजों में जिसका जितना हिस्सा हुआ, उस हिसाब से बाँट देते थे। कुछ समय बाद फिर से लोगों का समान लेकर निकल पड़ते थे।

कई शताब्दियों से कई पीढ़ियों से इसी तरह की पद्धति चलती रहने से, इसी तरह आने-जाने से उन सारे लोगों की जातियाँ अलग-अलग होते हुए भी उनकी दिनचर्या एक जैसी हो गई है। उठना-बैठना सोना, खाना-पीना और भी बाकी सारा काम लगभग एक जैसा हो गया था।

अँग्रेज़ों के आने के बाद से जब इनका यह व्यापार और व्यापार का यह ढंग टूटा तो ये सारे लोग अपनी दुकानें लगाकर बैठ गए। यही समाज वैश्य वर्ग कहलाया। इसीलिए वैश्य एक वर्ण था, न कि एक जाति। उसमें बहुत तरह के लोग बहुत सी जातियों के लोग नज़र आते हैं।

हर जाति में होते थे क्षत्रिय

इसी तरह क्षत्रिय वर्ण का भी है। हमारे यहाँ "क्षात्र" न तो अपने आप में कोई जाति रही है और न ही यह किसी की "वृत्ति" रही है। हर जाति का एक समूह अपने आप को क्षत्रिय मानता था। इस समय जो क्षत्रिय हैं, वह हर जाति में से निकला हुआ एक समूह था - चर्मकारों में से समगार निकले थे, जुलाहों में से रंगारे थे, ब्राह्मणों में से भूमिहार थे। इसी तरह हर जाति एक ग्रुप था। यह सब कुछ हज़ार साल से ऐसे ही चलता रहा था।

तलवारों के लिए मशहूर अदिलाबाद

अदिलाबाद (तेलंगाना) के लोहे को दमश्क कहते हैं। वहाँ जो दश्मिक शहर है, वह इसी लोहे के नाम से पड़ा है। अदिलाबाद का लोहा तलवारों के लिए बहुत मशहूर था।

अध्ययन का एक प्रश्न रहा है कि आखिर अदिलाबाद के इलाके में आदिवासियों के पास इतनी चाँदी आई कहाँ से? क्योंकि उस इलाके के आदिवासियों के पास थोड़ी बहुत चाँदी नहीं है, बहुत चाँदी है।

आदिवासी भी थे देश की तरक्की में भागीदार

एक बार अदिलाबाद में वहाँ के एक आदिवासी क्रान्तिकारी कोमराम भीम पर एक फिल्म बन रही थी। उस फिल्म के आर्ट डायरेक्टर होने के नाते मैने वहाँ के बहुत से इलाकों में घूमकर वहाँ के गहनों आदि की जानकारियाँ इकट्ठी की थी। उस दौरान कई सुनारों से भी मिला। उनसे मिलने पर मेरा प्रश्न यही हुआ करता था कि पिछले दस सालों में उन लोगों ने लगभग कितनी चाँदी गला ली होगी? और उन सभी के उत्तर आश्चर्यजनक हुआ करते थे। दस सालों के अन्दर उनमें से लगभग सभी ने 6 से 10 किलो चाँदी के गहने गला ड़ाले थे। पूछने पर पता चला कि पता नहीं क्यों, मगर लोग अपनी चाँदी बेचते जा रहे हैं। उस समय तो खैर ये आदिवासी लोग अपनी चाँदी बेच रहे थे मगर पहले उन्होंने यह चाँदी कमाई कैसे? इनके पास आखिर इतनी चाँदी आई कहाँ से?

बडी आसानी से यह पता लगा कि पहले आदिवासी समाज आजकल की तरह तथाकथित मुख्यधारा से इतना कटा हुआ नहीं था। अदिलाबाद कस्बे के सारे पशु इन आदिवासियों के पास जँगल में रहा करते थे। अदिलाबाद बस्ती के केवल दूध देने वाले पशु ही लोग अपने पास गाँव मे रखते थे। बाकी सारे पशु जंगलों में आदिवासियों के पास छोड़ दिए जाते थे। उसके लिए बाकायदा उन्हें अनाज दिया जाता था। हज़ारों पशु उनके पास होते थे।

जंगलों में रहते थे पर आज की तरह समाज से कटे नहीं थे

पशु के मर जाने के बाद उसका चमड़ा, सींग आदि अन्य सारी चीज़ें वे लोग ही रखते थे। इन सारी चीज़ों पर उनका अधिकार हुआ करता था। बस्ती के

चर्मकारों को चमड़े की ज़रूरत होने पर वे उनके पास जाकर बदले में चाँदी आदि देकर अपनी ज़रूरत का चमड़ा लाते थे।

इसी तरह बंगलगिरि समाज के लोग हैं, जो चूड़ी बनाने का काम करते हैं। वे लोग भी साल में दो-तीन बार उनके पास जाकर बदले मे चाँदी आदि देकर सींग लाते थे, जिससे चूडियाँ तैयार होती थीं।

इसके अलावा जंगलों में एक विशेष तरह की घास भी होती थी। आदिवासी लोग उस घास की कटाई करके अपने पास रखते थे। वहीं जंगलों में भट्टियाँ लगाकर उसका तेल निकालते थे। बस्ती में उस घास से निकले तेल का व्यापार करने वाले व्यापारियों का एक समूह था। वे जंगलों में जाते थे, बदले में चाँदी देकर उनसे घास का तेल निकलवा लेते थे।

इसके अलावा, ये लोग बहुत तरह की जडी-बूटियाँ तैयार करते थे। इस तरह उनके पास बहुत सी चाँदी इकट्ठी होती रहती थी।

इन सारी पद्धितियों के टूटने के बाद से ये लोग कंगाल होने लगे। नतीजतन, उन्हें अपनी चाँदी बेचने की नौबत आ गई। इससे पहले ये लोग समाज में इतना कटे हुए नहीं थे। रहते ज़रूर जंगलों में थे, मगर समाज के साथ जुडे हुए थे।

सब में बंटता था व्यापार से कमाया धन

व्यापार के इन्हीं तौर-तरीके के प्रतीक के तौर हमारे यहाँ आज भी दशहरे के अवसर पर "सीमोल्लंघन" की परम्परा निभाई जाती है। चूँकि गाँव के भीतर व्यापार का निषेध हुआ करता है, इसलिए लोग गाँव की सीमा का उल्लंघन करके गाँव के बाहर जाते हैं और उस सीमा के बाहर से "सोने" और "चाँदी" के रूप में "शमी" की पत्तियाँ लेकर आते हैं।

यह सोना और चाँदी भी स्वयं के उपयोग के लिए या स्वयं के घर में ले जाकर कर रखने के लिए नहीं होता है, बल्कि इसे आपस में गले मिलकर लोगों में बाँटा जाता है। ठीक उसी तरह जैसे बाहर से वैश्य वर्ण के लोगों के द्वारा कमाकर लाई गई धन-सम्पदा को वे लोग अपने कारीगर बन्धुओं में बाँट दिया करते थे।

समझ गये क्यों थे सोने की चिड़िया?

यह हमारे देश की उद्योग-प्रधान प्रकृति, व्यापार की पद्धतियाँ और व्यापार - लाभ के बँटवारे की हमारी अपनी व्यवस्थाएँ थीं जिसके कारण हमारा देश सोने की चिड़िया कहलाया और व्यापार का लाभ कुछ ही हाथों में न सिमटकर सभी लोगों तक बराबरी से पहुँचा था।

-रवीन्द्र शर्मा

बीमारी
संयोग नहीं षडयंत्र

पिछले कुछ वर्षों में इंसानों का ऐसे-ऐसे रोगों से पाला पड़ा है जिसके बारे में इतिहास में न तो पहले कभी पढ़ा था और न ही कभी सुना था। **आश्चर्यजनक रूप से एक से एक नये प्रकार के रोग जैसे डेंगू, चिकनगुनियां, स्वाईन फ्लू, बर्ड फ्लू, एड्स और इबोला अस्तित्व में आ गये हैं। प्रत्येक वर्ष दुनिया की एक बड़ी आबादी इन अटपटे रोगों के चपेट में आ जाती है और लाखों लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता है।** दक्षिणी अमेरिका के देशों में इबोला का आतंक तो कुछ ऐसा फैला कि लोग घरों से बाहर निकले से डरने लगे थे। ये बीमारियां मानो कोई दानव हों जो हर साल एक निश्चित समय पर अपना भोजन लेने आती है और हजारों लोगों को चट कर जाती है। जमाने को भयभीत करने वाले ये रोग क्या एकाएक प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुए या निजी हितों के लिए इन्हें कृत्रिम रूप से लेबोरेट्री में अरबों रूपया खर्च करके बनाया गया? भला कौन बेवकूफ है जो अरबों रूपया खर्च करके इन रोगों को पैदा करेगा और क्यों? पर साधारण लोग इस सच्चाई से बेखबर होने के कारण बेवजह ही पिसते रहते हैं।

रोगों का दाता भगवान या शैतान?

जन साधारण की मान्यता होती है कि रोग कर्मों के फल से होते हैं और भगवान उसको देता है । उनका स्वयं की संतुष्टि के लिए यह भी मानना है कि 'दवा वही देगा जिसने रोग दिया है'। और कुछ लोगों का मानना है कि गलत जीवन शैली के कारण रोग उत्पन्न होते है। हाँ, परन्तु गलत जीवन शैली से शरीर रोगों का शिकार तो जल्दी हो सकता है लेकिन इन रोगों की उत्पत्ति का रहस्य वो नहीं जान पाते हैं। दूसरा, इन रोगों का शिकार तो सही जीवनचर्या पालन करने वाले लोग भी हो जाते हैं और छोटे-छोटे बच्चों का क्या, उनकी क्या गलती है? **इतना तो आप भी समझ सकते हैं कि जब रोग-मर्ज नहीं होगें तो दवाई की जरूरत नहीं होगी और फिर दवा कम्पनियां भी नहीं होगी। यही कारण है कि दवा कम्पनियों को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ऐसे नये-नये रोग और वायरस तैयार करने पड़ते हैं।** अगर वो ऐसा नहीं करेंगे तो उनका अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा और उनकी रोजी-रोटी कैसे चलेगी? दवा कम्पनियों की यही मजबूरी इंसानों पर कहर बनकर गिरती है जो बाद में इंसानो की मजबूरी बन जाती है और कम्पनियों का व्यापार। आज पूरी दुनिया में दवाई कम्पनियों का बाजार लाखों करोड़ों रूपये तक पहुँच गया है और इस व्यापार को दिन प्रतिदिन आगे बढ़ाने के लिए कुछ सौ करोड़ रूपये खर्च करके नये रोग पैदा कर दिये जाये तो उन्हें नुकसान ही क्या है? और जब बीमारी का ईलाज इन्हीं के मोहताज हो तो इनके धंधे का मुनाफा हजारों गुणा बढ़ जाता है। बस यही तो इन्हें चाहिए।

इस चक्रव्यूह की चरणबद्ध प्रक्रिया
रातों-रात खरबपति बनती दवाई कंपनियां

1. विभिन्न प्रकार के जैविक अनुसंधानों के लिए दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियों द्वारा ऐसे संस्थानों की फंडिंग की जाती है जो रोगों और महामारियों पर रिसर्च करते हैं।
2. **भारत जैसे विकासशील देशों के डॉक्टर और वैज्ञानिकों को ब्रेन-ड्रेन किया जाता है ताकि वो अमेरिका जैसे विकसित देशों में हो रहे जैविक अनुसंधानों में सहायक बनें।**
3. ये शैतानी अनुसंधान संस्थान मानव जाति के लिए सिर्फ नये रोग ही नहीं पैदा करते बल्कि ये जानवरों की बीमारियों को भी किस तरह मनुष्यों में घुसाया जाय, इस पर भी प्रयोग करते रहते हैं, जैसे एड्स (चिंपाजी बंदरों से), बर्ड फ्लू (पक्षियों से) और स्वाइन फ्लू (सूअरों से)। आप खुद सोचिये, जानवरों में होने वाले रोग आख़िरकार इंसानों में कैसे आ गये? पहले तो कभी नहीं आए।
4. अब वायरस बनाया गया है दवाई बिकवाने के लिए। एक तरफ बड़ी मात्रा में वायरस फैलाकर दहशत पैदा की जाती है तो दूसरी तरफ खबर आती है कि एंटी वायरस बना लिया गया है।
5. फिर इसे पेटेंट किया जाता है और कंपनियां रातों रात खरबपति बन जाती है, ये बहुत आसान चरण हैं खरबपति बनने के लिए।
6. जैविक हमले में कोई सबूत नहीं रहता कि किसने कब किया। ये अप्रत्यक्ष युद्ध होता है, लेकिन ये बहुत प्रभावी और फायदेमंद होता है।
7. **साथ ही एंटी वायरस तैयार करने वाले देश को दुनिया भर में वाह-वाही मिलती है और उनका आभार जताया जाता है कि उन्होंने लोगों के प्राण बचा लिए। जबकि असलियत में उन्होंने ही वे रोग पैदा किये होते हैं।**
8. दवाई भी ऐसी बनाई जाती है ताकि रोग जल्दी ठीक न हो और लम्बा चले और साथ ही साथ दूसरे रोग पैदा हों जिससे मुनाफा ज्यादा हो।

क्या होता है सच सामने लाने वालों का अंजाम

दवा कंपनियां सिर्फ ये तरह-तरह के रोग और मर्ज ही नहीं तैयार करती है बल्कि ऐसे लोगों को मौत की नींद भी सुलाती हैं जो उनके खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश करते है या उनके खेल को बिगाड़ने के प्रयास करते हैं। आपको यह जानकार हैरानी होगी कि ऐसे डॉक्टर और खोजकर्ता जो कैंसर, इबोला और एड्स जैसे रोगों के ईलाज पर खोज कर रहे थे वे बड़े पैमाने पर या तो मारे गये या लापता हो गये।

एक अमेरिकन वेबसाइट हेल्थ नट न्यूज की एक खोजकर्ता एरिन एलिजाबेथ की माने तो पिछले कुछ वर्षों में कम से कम ऐसे 60 डॉक्टर मारे गये जो कैंसर पर रिसर्च कर रहे थे। इन सभी डॉक्टरों की मृत्यु आज भी एक रहस्य है। एरिन ने अपनी रिपोर्ट में उन सभी डॉक्टरों की बकायदा लिस्ट भी जारी की है जो दवा माफियाओं के शिकार बने।

सोशल मीडिया पर ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं जो अमेरिका मेडिकल एसोसियेशन को अमेरिकन मर्डरर एसोसियेशन भी कहकर बुलाते हैं क्योंकि उनका मानना है कि प्रशासन से जुड़े मेडिकल रिसर्च अुनसंधान इन दवा माफियाओं के हितों के लिए ही कार्य करते हैं। अमेरिका के आर्मी मेडिकल रिसर्च अनुसंधान पर भी इबोला और एड्स जैसे रोगों के वायरस तैयार करने जैसे आरोप लग चुके हैं।

अमेरिका के वरिष्ठ डॉक्टर की हैरान कर देने वाली रिपोर्ट

अमेरिका के ही एक और डॉक्टर एवं सीनियर रिसर्चर डॉ0 लियोनार्ड होरोत्जि ने 1995 की अपनी विश्व प्रसिद्ध किताब **Emerging Viruses: AIDS And Ebola : Nature, Accident or Intentional?** में अमेरिका के नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट पर यह आरोप लगाये थे कि वह कैंसर जैसे रोग पैदा करने के लिए न सिर्फ वायरस तैयार कर रहा है बल्कि इसको हथियार के रूप में कैसे प्रयोग किया जाय इस पर भी शोध कर रहा है। ऐसे समय में जब धरती पर इबोला का कहीं अस्तित्व भी नहीं था तब डा0 होरोवित्ज ने इस विषय पर खुलासा कर दिया था। इसलिए इस बात को और भी बल मिलता है कि ये सभी रोग एवं महामारियां दवा माफियाओं द्वारा ही लाई गयी। **डॉ0 होरोवित्ज की माने तो इन शैतानी रिसर्च संस्थानों का कैंसर पर ये शोध 1968 से ही चल रहा है जिसे 'स्पेशल वायरस कैंसर रिसर्च प्रोग्राम' नाम दिया गया था। इस शोध का लक्ष्य इन कैंसर वायरस को बनाकर उन्हें मानवों में प्रवेश कराना एवं उसके पश्चात उसके लिए दवाई तैयार करना था।**

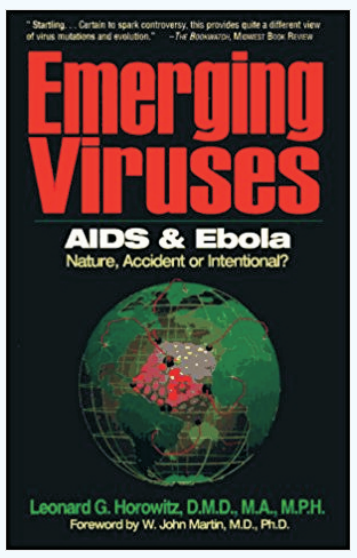

क्यों चुप है मीडिया और सरकारें?

दुनियाभर की मीडिया को एकतरह से नियंत्रित करने वाली पश्चिमी मीडिया ने कभी इन रहस्यों पर चर्चा करना उचित नहीं समझा क्योंकि प्रायः ऐसे षडयंत्रों में ये सभी खिलाड़ी सम्मिलित होते हैं। इसके चलते ऐसे राज कभी नहीं खुल पाते है जो इन माफियाओं की करतूतों से दुनिया को परिचित करा सकें। इन समस्याओं पर सरकारें भी ज्यादातर चुप्पी साधे रहती हैं। उसका कारण है कि यही कंपनियां सरकार में शामिल लोगों को चुनाव के वक्त फंड दिया करती हैं।

जैविक युद्ध से निपटने को क्या भारत सरकार है तैयार?

प्राचीनकाल में युद्ध तलवारों और धनुष-बाणों से होता था, फिर समय में हुए परिवर्तन के साथ युद्ध बंदूको, गोलों, बमों और तोपों से होने लगा। समय के साथ-साथ युद्ध के तरीके बदलते रहे हैं। इसी तरह अब समय है "जैविक युद्ध" का। ऐसे युद्ध का जिसके बारे में जानकारी होना तो दूर लोग सोच भी नहीं सकते। जैविक हथियारों के जरिये कोई भी देश अपने शत्रु देश को बिना जमीनी युद्ध के घर बैठे-बैठे बर्बाद कर सकता है। **आज "जैविक युद्ध" की चपेट में दुनिया की एक बड़ी आबादी है। जैविक युद्ध कुछ और नहीं बल्कि हर साल रोगों एवं बीमारियों के रूप में चल रहा ये खेल है।** ये कहाँ से हो रहा है, इस युद्ध के हथियार कौन तैयार कर रहा है, इसके बारे में लोगों को कुछ भी नहीं पता रहता।

300 करोड़ लोगों को मारने की तैयारी?

इन्हीं लोगों के साथ काम कर रहे एक वैज्ञानिक बिल डीगल ने दावा किया है कि अमेरिका ने एक ऐसे वायरस का निर्माण कर लिया है जिसकी मारने की क्षमता का जब एक कम्प्यूटर प्रोग्राम द्वारा अंदाजा लगाया गया तो पता चला कि यह वायरस मात्र तीन महीने में धरती के 300 करोड़ से ज्यादा लोगों का सफाया कर सकता है। **क्या भारत सरकार के पास ऐसे विध्वंसक हथियारों से लड़ने का कोई विकल्प है? अगर किसी कारण से हम पर ऐसे हथियारों का आक्रमण हो तो कहीं हमें अमेरिका के सामने घुटने तो नहीं टेकने पड़ेंगे?**

सौ की एक बात
चुप रहना समाधान नहीं

आज हमारे लिए ये जानना बेहद आवश्यक हो गया है कि आखिर हमारे देश में ऐसी समस्याएं क्यों हैं और इसके पीछे कौन-सी ताकते हैं? कुछ भी हो जाय पर शांत रहकर झेलते रहने वालों को समाज में जानवर कहा जाता है लेकिन आज गौर करने की जरूरत है कि कहीं हम भी तो वही जानवर नहीं बन गये हैं जो हर विपरीत परिस्थिति में चुप रहता है और हांकने वाले हमें हांकते रहते हैं। जब तक हम प्रश्न उठाना और उनके जवाब तलाशना शुरू नहीं करेंगे तब तक हम यूँ ही तरह-तरह की महामारियाँ और दर्द झेलते रहेंगे।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रत्येक व्यक्ति को जीने का अधिकार मिला है। षडयंत्रपूर्वक कृत्रिम रोगों से अगर किसी की जान जाती है तो वह मृत्यु नहीं हत्या मानी जानी चाहिए। उसकी तहकीकात के लिए एक जांच कमेटी गठित की जानी चाहिए और दोषियों को दंड मिलना चाहिए।

-रवि ओझा
विधि छात्र, इलाहाबाद स्टेट यूनिवर्सिटी

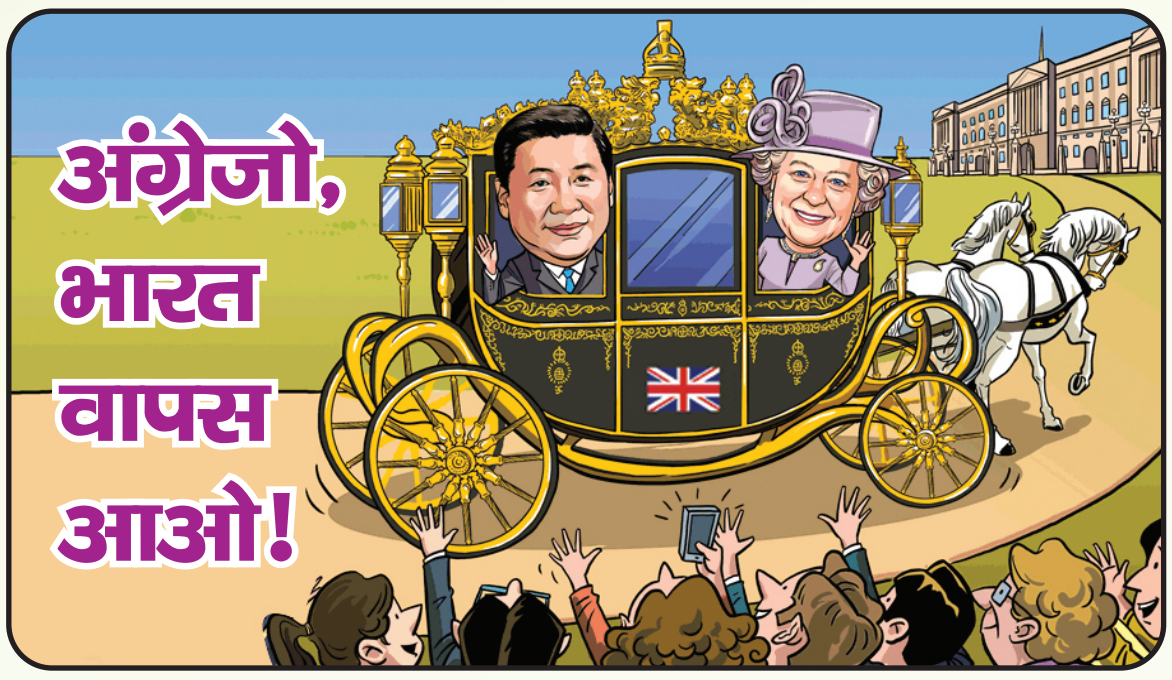

वित्तमंत्री का अंग्रेजों को न्यौता

इतिहास अपने आपको दोहराने जा रहा है। वित्तमंत्री के लन्दन में दिए गए भाषण ने इस देश में एक नई जान फूँक दी है। अँग्रेज़ों को भारत लौटने का न्यौता दिया जा चुका है। वित्तमंत्री ने तो दिलेरी के साथ अपना फर्ज़ अदा कर दिया है। गेन्द अब अँग्रेज़ों के पाले में है।

लन्दन के इण्डिया हाउस में ब्रिटिश उद्योगपतियों को सम्बोधित करते हुए हमारे वित्तमंत्री ने कहा, "हिन्दुस्तान का मौसम बहुत अच्छा है। हिन्दुस्तान के मज़दूर दुनिया के सबसे सस्ते मज़दूर हैं। हिन्दुस्तान जैसा बड़ा बाज़ार आपको कहाँ मिलेगा? आइए, हिन्दुस्तान में पूँजी लगाइए। हिन्दुस्तान की गरीबी दूर कीजिए। इस बार हम आपकी इतनी बढ़िया देखभाल करेंगे कि आप वापस जाने का नाम नहीं लेंगे।"

अंग्रेजों को वापिस बुलाये जाने का था यकीन

अँग्रेज़ों को इस बात का पूरा यकीन था कि एक दिन उन्हें वापस ज़रूर बुलाया जाएगा। जब वे गए थे तो अपनी मर्ज़ी से नहीं गए थे। कुछ सिरफिरे क्रान्तिकारियों, बागी किसानों और जुनूनी नौजवानों ने उनका मज़ा किरकिरा नहीं किया होता तो उनके साम्राज्य का सूरज कभी अस्त नहीं होता।

जाते समय अँग्रेज़ों ने अपनी वापसी का पूरा इन्तज़ाम कर लिया था। 1947 में जिन्हें सत्ता सौंपी गई, वे उनके भरोसे के लोग थे। जिसे आज़ादी की संज्ञा दी गई, वह सत्ता का हस्तान्तरण था - ट्रांसफर ऑफ पॉवर। भारत का शासन कुछ सालों के लिए काले अँग्रेज़ों को लीज़ पर दे दिया गया था।

कानून बनाओ, मलाई खाओ

अँग्रेज़ों को इस बात का पूरा एहसास था कि अगर उन्होंने हिन्दुस्तान के लिए कायदे-कानून नहीं बनाए, तो उनके जाने के बाद यह काम कभी नहीं हो सकेगा। आखिर जो कौम दो सौ सालों तक गुलाम रही है, उसे कायदे-कानून बनाने की तमीज़ कहाँ से आएगी?

भारतीयों को सत्ता सौंपते वक्त अँग्रेज़ों ने कहा, "आप हमारा संविधान ले लीजिए। हमारे कायदे-कानून ले लीजिए। आखिर इन्हीं के सहारे हमने हिन्दुस्तान पर दो सौ सालों तक शासन किया है। आपको भी इसी तरह ऐश करना है तो नए कानून बनाने की ज़हमत मत उठाइए।"

अँग्रेज़ों के बनाए गए हज़ारों कानून आज भी इस देश में चल रहे हैं। पिछले 70 वर्षों में अँग्रेज़ों की इस विरासत पर ज़रा भी आँच नहीं आई है। स्वामीभक्ति का ऐसा उदाहरण दुनिया के किसी अन्य इतिहास में मिलना मुश्किल है। अँग्रेज़ों ने भी कभी नहीं सोचा होगा की उनके जाने के 70 साल बाद भी उनके कानून हिन्दुस्तान पर हुकूमत कर रहे होंगे। यह अँग्रेज़ों के बनाए गए कानूनों का कमाल है कि आज तक एक भी बड़े आदमी को सज़ा नहीं हुई है। वरना हम सब जानते हैं कि कम से कम तीन चौथाई राजनेता और प्रशासनिक अधिकारी आज जेल में होते। इनके लिए नए जेलें बनवानी पड़तीं। अच्छा हुआ जो हमारी सरकारों ने अँग्रेज़ों के कानून नहीं बदले, वरना एक पंचवर्षीय योजना का सारा धन नई जेलें बनवाने में ही खर्च हो जाता।

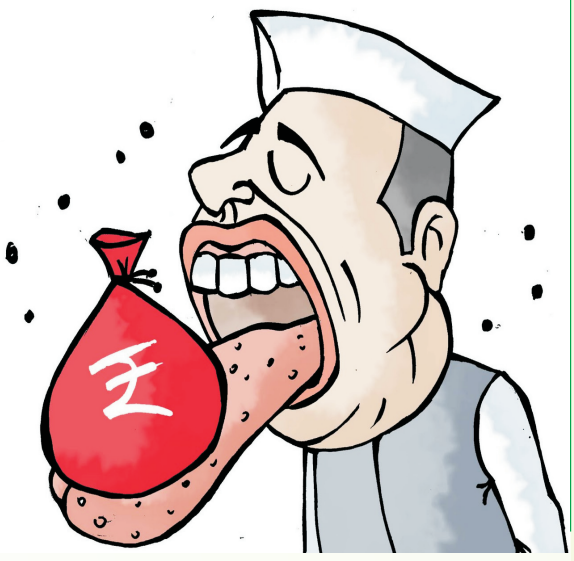

अंग्रेजों की चाटुकारिता देशी उद्योगपतियों की शान

हमारे देशी उद्योगपतियों ने जिस असाधारण समर्पण भाव से अँग्रेज़ों का खयाल रखा, उसका एहसान अँग्रेज़ किस तरह से चुकाएँगे? यह मेरी समझ से परे है। इस बार "राय बहादुर" और "खान बहादुर" जैसे खिताबों से कार्पोरेट जगत् मानने से रहा।

अँग्रेज़ों की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के एजेंट, या यूँ कहिए मैनेजर, बनने में उद्योगपतियों ने कभी शर्म महसूस नहीं की। सिर्फ अपनी नाक बचाने के लिए इन्होंने इसे कोलॅबोरेशन का नाम दिया। कहीं अँग्रेज़ नाराज़ न हो जाएँ इसलिए भारतीय उद्योगपतियों ने टेक्नोलॉजी तक ईज़ाद नहीं की। अगर सारी चीज़ें हमारे यहाँ बनने लग गईं तो अँग्रेज़ों का माल कौन खरीदेगा?

उनके यहाँ किस चीज़ की कमी हैं? सुई से लेकर जहाज तक वे हमारे लिए बना रहे हैं।

इस मामले मे शासकों का रवैया प्रातःस्मरणीय और वन्दनीय कहा जा सकता है। अँग्रेज़ी राज में भारतीय उत्पादनों पर जितने टैक्स लगाए गए थे, वे आज भी बदस्तूर जारी हैं। एक्साइज डूटी, सेल्स टैक्स, टर्न ओवर टैक्स और ऊपर से इनकम टैक्स। और तो और, दुनिया के किसी भी मुल्क में माल की आवाजाही पर टैक्स नहीं है। हमारे यहाँ चुँगी कर - ऑक्ट्राय - आज भी लागू है।

कुछ लोग इन करों को हटाने की बात करते हैं। हमारे शासक ऐसा नहीं होने देंगे। ये अँग्रेज़ों की निशानियाँ हैं। ये दो सौ सालों की लूट और जुल्म की निशानियाँ हैं। ये निशानियाँ अगर मिट गईं तो शासक अँग्रेज़ों को क्या मुँह दिखाएँगे? किस बूते पर अँग्रेज़ों को वापस आने के लिए कहेंगे?

गद्‌गद हो रही होगी मैकाले की आत्मा

अँग्रेज़ यह मानते थे कि किसी कौम को नष्ट करना हो, तो सबसे पहले उसकी शिक्षा-प्रणाली को नष्ट कर दो। अँग्रेज़ों की शिक्षा-प्रणाली में आज़ाद भारत में आज तक कोई बुनियादी फेरबदल नहीं किया गया है। ऐसी निष्काम सेवा के लिए हमारे शिक्षा-शास्त्रियों को एक-एक दर्ज़न "भारत रत्न" दिए जाने चाहिए। इस संख्या में बढ़ोतरी भी की जा सकती है। हर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय में विचरण कर रही मैकाले की आत्मा कितनी गद्‌गद हो रही होगी, इसका अन्दाज़ा वे लोग नहीं लगा सकते, जिसकी आत्माएँ मर चुकी हैं।

विदर्भ के किसान नेता से लेकर दिल्ली विश्वविद्यालय व जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री सभी वित्तमंत्री की हौसला अफज़ाई कर रहे हैं। इण्डियन मर्चेंट चेम्बर के एक सदस्य का मानना है कि वित्तमत्री ने समय रहते अँग्रेज़ों से भारत वापस आने की पेशकश न की होती, तो देश

तबाह हो जाता। देश आज अरबों डॉलर के कर्ज़ तले डूबा है। अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। अँग्रेज़ आएँगे और सारा कर्ज़ चुका देंगे।

सुप्रीम कोर्ट के वकील, उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री, जिनका समाजवाद पर आजकल एकाधिकार है और अँग्रेज़ी के ख्याति प्राप्त स्तम्भ लेखक वित्तमंत्री की पीठ ठोंक रहे हैं। भारतीय वामपन्थ के विलक्षण शिल्पकार तो पगला गए हैं। अँग्रेज़ों के साथ गठबंधन कर देश में साम्प्रदायिक ताकतों को समाप्त करने की रणनीति पर पॉलित ब्यूरों में बहस शुरू भी हो गई है। चाँद में दाग हो सकता है, अँग्रेज़ों की धर्मनिरपेक्षता में नहीं। मायावती जी ने अपने पुरज़ोर समर्थन में कहा, "संविधान भले ही अँग्रेज़ों का दिया हुआ हो, उसे लिखा तो बाबा साहेब आम्बेडकर ने ही है।"

वित्तमंत्री के लिए ऐसा ऐतिहासिक समर्थन ज़रा-भी अप्रत्याशित नहीं है। उन्हें पता था - हर राजनीतिक पार्टी की आत्मा एक ही है, सिर्फ बैनर अलग-अलग हैं। किसी भी राजनैतिक पार्टी की सरकार को विदेशी कम्पनियों के साथ सौदे करने से ऐतराज़ नहीं है। वे दिन लद गए जब कमीशन खाना देशद्रोह माना जाता था। अँग्रेज़ी राज में चोरों और ठगों ने मिलकर जितना हिन्दुस्तान को लूटा होगा, उससे ज्यादा माल तो आज मात्र एक वर्ष में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी अपने मुनाफे के रूप में ले जाती है।

असली और खानदानी अंग्रेज सिर्फ भारत में

लेकिन मैं वित्तमंत्री जी से सहमत नहीं हूँ। आखिर अँग्रेज़ों को बुलाने की ज़रूरत क्या है? कौन कह सकता है कि अँग्रेज़ चले गए हैं? हमारे उठने, बैठने, साँस लेने, जीने की हर गतिविधि में अँग्रेज़ मौजूद हैं। कोई ऐसे ही थोड़े चला जाता है अपनों को छोड़कर? चले गए लेकिन औलाद छोड़ गए। दलाल छोड़ गए। आफरीन!

कहाँ नहीं हैं अँग्रेज़? काला कोट पहनकर अदालत में मौजूद हैं। खाकी वर्दी पहने हुए थाने में मौजूद हैं। लिप्टन चाय की चुसकियाँ लेते हुए हर दिवानखाने में मौजूद हैं। मैंने हर बार उसे संसद में बजट पेश करते हुए देखा है। लम्बा चोगा पहनकर दीक्षान्त-समारोह में स्नातकों को डिग्रियाँ बाँटते हुए देखा है। सात-घोड़ों की बग्घी में सवार होकर गणतंत्र दिवस की हर परेड में सलामी लेते हुए देखा है।

अँग्रेज़ हर चुंगी नाके पर जज़िया वसूल रहा है। फॉरेस्ट अफसर की हैसियत से आदिवासियों पर

लाठियाँ बरसा रहा है। मन्दिरों को मस्ज़िदों से लड़वा रहा है। किंगफिशर की एक बोतल पर रॉक संगीत का कैसेट मुफ्त दे रहा है। बेटियों और बहनों को लेडी डायना की लाइफ-स्टाइल परोस रहा है।

संविधान अँग्रेज़ों का, संसदीय लोकतंत्र व कानून अँग्रेज़ों का, न्याय और प्रशासनिक व्यवस्था अँग्रेज़ों की, शिक्षा प्रणाली अँग्रेज़ों की, भाषा अँग्रेज़ों की। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इतिहास में एक दिन ऐसा आएगा जब आपको असली और खानदानी अँग्रेज़ सिर्फ हिन्दुस्तान में मिलेंगे, इग्लैण्ड में नहीं।

- अक्षय जैन
लेखक, व्यंग्यकार

(1988 में प्रकाशित)